229.04
गौड़।वे।शि

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१६

शिखा और यज्ञोपवीत

लेखक

याज्ञिकसम्राट्

पण्डित श्रीवेणीरामशर्मा गौड

वेदाचार्य, काव्यतीर्थ

विभागाध्यक्ष—गोयनका संस्कृत कालेज, वाराणसी

229.04
गौड़ | वे | शि

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी
आत्मा वै सुरवम्

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ

पुस्तकालय

परिग्रहण क्रमाङ्क 1957

वर्गाङ्क 227.04

पुस्तकाङ्क गौ०/पे/शि

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१६

शिखा और यज्ञोपवीत

लेखक

याज्ञिकसम्राट्

पण्डित श्रीवेणीरामशर्मा गौड

वेदाचार्य, काव्यतीर्थ

वेदविभागाध्यक्ष—गोयनका संस्कृत कालेज, वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ५२९३९ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली–११०००७

२२६.०४
गौ३/बो/शि

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्रथम संस्करण १९७८

मूल्य रु० २–५०

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्भा विश्वभारती

पो० बाक्स नं० १२९
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी
फोन : ६५४४४

JADAUKUNWAR RASTRABHASHA SERIES
NO. 16

ŚIKHĀ AUR YAJÑOPAVĪTA

VEDĀCĀRYA VEṆĪRĀMA ŚARMĀ GAUḌA
Head, Veda Section
Goenka Sanskrit College, Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publishers

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 (India)

Telephone : 52939 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

DELHI-110007

© *Chaukhambha Orientalia*

First Edition 1978

Price Rs. 2-50

Printers—Vidya Vilas Press, Varanasi

दो शब्द

भारत धर्मप्राण देश है। धर्मप्राण देश में धर्म का पालन ही भारत की विशेषता है। अतः हिन्दू-जाति के लिये धर्म का पालन अनिवार्य और आवश्यक है।

धर्म-पालन के अन्तर्गत ही शिखा और यज्ञोपवीत-धारण भी कहा गया है। अतः द्विजमात्र को सर्वदा शिखा और यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

शिखा और यज्ञोपवीत-धारण प्रत्येक शुभ कर्म का अङ्ग है। अतः शिखा और यज्ञोपवीत के बिना सन्ध्योपासन आदि धार्मिक कर्म किये जाते हैं, वे अङ्गहीन कहे जाते हैं।

विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥

(वैद्यनाथीय स्मृतिसुक्ताफल)

'शिखा और यज्ञोपवीत के बिना जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें राक्षसीय कर्म समझना चाहिये। इस तरह शिखा और यज्ञोपवीत के बिना किये हुए समस्त कर्म निष्फल होते हैं।'

अतः प्रत्येक द्विज के लिये सर्वदा शिखा और यज्ञोपवीत धारण करने के लिये कहा गया है।

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥
(कात्यायनस्मृति १।४)

'द्विज सर्वदा यज्ञोपवीत पहने और शिखा को बाँधकर रखे। जो द्विज शिखा में गाँठ लगाये वगैर और यज्ञोपवीत से रहित होकर सत्कर्म करता है, उसका किया हुआ समस्त कर्म न करने के सदृश हो जाता है।'

अतः प्रत्येक द्विज को शिखा और यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। जो द्विज सर्वदा शिखा और यज्ञोपवीत धारण करता है, वह अत्यन्त पवित्र और प्रशंसनीय कहा जाता है।

शिखा हिन्दू-जाति का और यज्ञोपवीत द्विजाति का मुख्य चिह्न है। शिखा के बिना हिन्दुत्व की रक्षा नहीं हो सकती और यज्ञोपवीत के बिना द्विजत्व की रक्षा नहीं हो सकती। अतः हिन्दुत्व की रक्षार्थ हिन्दू-जाति को और द्विजत्व को रक्षार्थ द्विज को सर्वदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

वर्त्तमान समय में हिन्दू-जाति के द्वारा व्रत, जप, तप, हवन, यज्ञ-याग आदि जो बड़े-बड़े शुभ कर्म किये जाते हैं, उनका यथार्थ फल देखने में नहीं आता। इसका एकमात्र कारण शिखा और यज्ञोपवीत का अभाव है। अतः

प्रत्येक द्विज को सर्वदा शिखा और यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

शिखा का वास्तविक महत्त्व हमारे पूर्वज हिन्दू जानते थे। यवन राज्य में हिन्दू-जाति ने अपनी शिखा की रक्षा के लिये अपने सिर कटाकर प्राण गँवा दिये, किन्तु शिखा नहीं कटवाई।

गुरु गोविन्द सिंह के पुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह ने अपनी शिखा की रक्षा के लिये अपने को जीवित ही दीवार में चुनवा लिया, किन्तु शिखा नहीं कटाई। इसी प्रकार हकीकतरायने अपना सिर कटवाकर शिखा की रक्षा की थी।

दुःख का विषय है कि जिस शिखा की रक्षा के लिये हमारे धर्मप्राण हिन्दुओं ने अपने प्राण गँवाये थे, आज उस महत्त्वपूर्ण शिखा को आज के हिन्दू व्यर्थ समझकर स्वयं अपने हाथों से काटकर फेंक रहे हैं।

मेरी प्रत्येक द्विज बालक के माता, पिता और अभिभावकों से प्रार्थना है कि वे अपने-अपने बालकों को शिखा और यज्ञोपवीत धारण की आवश्यकता और महत्ता बतलावें और उनका यथासमय यज्ञोपवीत-संस्कार कर उन्हें द्विज बनावें, जिससे वे सन्ध्योपासन, गायत्रीजप तथा वेदाध्ययन आदि नित्यकर्म करने के अधिकारी बनें।

आशा है, इस लघु पुस्तिका के द्वारा प्रत्येक द्विज शिखा और यज्ञोपवीत की आवश्यकता और महत्ता से परिचित होकर शिखा और यज्ञोपवीत को धारण करेंगे।

'शिखा और यज्ञोपवीत' लघु पुस्तिका को प्रकाशित करने के लिये मैं चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी के अध्यक्ष महोदय को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

भैरवाष्टमी
संवत् २०३५

वेणीराम गौड वेदाचार्य

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या
१ शिखाधारण की आवश्यकता	...	१
२ शिखा रखने से लाभ	...	३
३ शुभ कर्म में शिखाबन्धन आवश्यक है	...	३
४ शिखा का स्थान और उसका महत्त्व	...	६
५ चूडाकरण-संस्कार का काल	...	६
६ शिखा की संख्या का विचार	...	७
७ चूडाकरण का अर्थ	...	८
८ उपनयन-शब्दार्थ	...	१०
९ यज्ञोपवीत-संस्कार के नाम	...	१०
१० यज्ञोपवीत के नाम	...	१०
११ उपनयन के अधिकारी	...	१०
१२ उपनयन का काल	...	११
१३ उपनयन के कालातिक्रमण होने पर प्रायश्चित्त	...	१३
१४ काम्यपरक उपनयन का काल	...	१३
१५ उपनयन-संस्कार की आवश्यकता	...	१४
१६ उपनयन-संस्कार से ही द्विजत्व की प्राप्ति	...	१६

१७ उपनयन के बिना मनुष्य प्रायश्चित्ती है ... १७
१८ व्रतबन्ध और उसका महत्त्व ... १८
१९ वेदारम्भ का समय ... १८
२० उपनयन-संस्कार के प्रधान कार्य ... २१
२१ वेदारम्भ और समावर्त्तन ... २१
२२ यज्ञोपवीत का सन्देश ... २२
२३ यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में भ्रान्ति ... २३
२४ उपनयन संस्कार के त्याग की वृद्धि ... २४
२५ शूद्र को यज्ञोपवीत का निषेध क्यों ? ... २६

श्रीः

शिखा और यज्ञोपवीत

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥

शिखा-धारण की आवश्यकता

बालकों का जब चूडाकरण (मुण्डन) संस्कार होता है, उस समय उनके सिर के बीचोबीच (मध्य) में बालों का एक गुच्छा रखा जाता है, जिसको 'शिखा' कहते हैं। हिन्दू-जाति के लिये शिखा-धारण को बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कहा है। शिखा-धारण के बिना मनुष्य देव और पितृकार्य के अयोग्य रहता है। अतः शिखा के बिना हिन्दू-जाति के किये हुए समस्त श्रौत-स्मार्त कर्म व्यर्थ ही हो जाते हैं।

कात्यायन स्मृति (१।४) में लिखा है—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

'द्विज सर्वदा यज्ञोपवीत पहने रहे और शिखा को बाँध कर रखे। जो द्विज शिखा में गाँठ लगाये वगैर और यज्ञोपवीत से रहित होकर कर्म करता है, उसका किया समस्त कर्म न करने के सदृश ही हो जाता है।'

'शिखी तिलकी कर्म कुर्यात्' इस श्रुति के अनुसार शिखावाले को ही समस्त सत्कर्म करने का अधिकार है, शिखा-विहीन को नहीं।

शिखा-धारण का उल्लेख शतपथब्राह्मण (१।३।३।५), गोभिल-गृह्यसूत्र (३।४।१९) आदि वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। अतएव हिन्दू-जाति में शिखा-धारण की प्रथा अनादि काल से प्रचलित है।

शास्त्रों में शिखा-धारण को अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कहा गया है। शिखा-धारण से ही हिन्दुत्व की पहचान होती है। शिखा-धारण से ही हिन्दुत्व का रक्षण और पोषण होता है। जिस पुरुष के शिखा नहीं होती, वह हिन्दू होते हुए भी वस्तुतः हिन्दू नहीं है। इसलिये हिन्दुत्व की रक्षार्थ प्रत्येक हिन्दू को जीवनपर्यन्त शिखा-धारण करनी चाहिये।

आपस्तम्बधर्मसूत्र (१।१०।८) का कहना है कि जो मनुष्य शिखा-विहीन है, वह श्रीहीन होता है। अतः श्रीकी प्राप्ति के लिये शिखा-धारण करना आवश्यक है—**'यशसे श्रियै शिखा'** (शुक्ल-यजुर्वेद १९।९२)।

प्राचीन ऋषि-मुनियों का कहना है कि जिस हिन्दू के शिखा नहीं है, वह हिन्दू ही नहीं है। अतः शिखा-विहीन हिन्दू के हाथ का न तो जल पीना चाहिये और न उसके साथ खान-पान आदि किसी भी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये।

यज्ञोपवीत के बिना शूद्रों का सब काम चल सकता है, किन्तु शिखा के बिना उनका कार्य भी विकलाङ्ग माना जाता है। अतएव प्राचीन समय में समस्त हिन्दू शिखा रखते थे।

प्राचीन काल के हिन्दू शिखा के महत्त्व को यथार्थतः जानते थे, अतएव वे प्राणपन से शिखा-धारण और शिखा-रक्षण करते थे। इन्हें यवनों द्वारा जब कभी शिखा कटाने के लिये बाध्य किया जाता

था, तो वे अपने अमूल्य जीवन की आहुति भी दे देते थे, किन्तु शिखा नहीं कटाते थे। प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है कि हकीकतराय, जोरावर सिंह और फतेह सिंह ने प्रसन्नता से अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया, किन्तु शिखा को नहीं कटाया। इसी प्रकार अनेक लोगों ने शिखा के रक्षणार्थ हँसते-हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया, जिनका प्राचीन इतिहास प्रत्यक्ष साक्षी है।

शिखा रखने से लाभ

१. शिखा रखने से और उसके यथावत् नियम-पालन से मनुष्य को सद्बुद्धि, सद्विद्या और सद्धर्म आदि की प्राप्ति होती है।

२. शिखा रखने से मनुष्य की आत्मशक्ति प्रबल बनी रहती है।

३. शिखा रखने से मनुष्य धार्मिक, सात्त्विक और संयमी बनता है।

४. शिखा रखने से मनुष्य लौकिक और पारलौकिक समस्त कार्यों में सफलता प्राप्त करता है।

५. शिखा रखने से मनुष्य ठीक-ठीक प्राणायाम-प्रक्रिया और अष्टाङ्ग योग आदि यौगिक क्रियाओं को कर सकता है।

६. शिखा रखने से मनुष्य की नेत्रज्योति सर्वदा सुरक्षित रहती है।

७. शिखा रखने से मनुष्य की समस्त देवता रक्षा करते हैं।

८. शिखा रखने से मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घायु होता है।

शुभ कर्म में शिखाबन्धन आवश्यक है

शास्त्रों में सन्ध्योपासन, देवपूजन आदि शुभ कर्म के समय शिखा बाँधने का विशेष विधान बतलाया है—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने ।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मुनिरब्रवीत् ॥

(मनुसंहिता)

'स्नान, दान, जप, हवन और देवपूजन में सर्वदा शिखा बाँधना चाहिये, यह मनु ने कहा है।'

गायत्र्या तु शिखां बद्ध्वा नैर्ऋत्यां ब्रह्मरन्ध्रतः ।
जूटिकाश्च ततो बद्ध्वा ततः कर्म समारभेत् ॥
निबद्धशिख आसीनो द्विज आचमनं चरेत् ।
कृत्वोपवीतं सव्येंऽशे वाङ्मनः कायसंयतः ॥

'गायत्रीमन्त्र द्वारा शिखा बाँधकर और ब्रह्मरन्ध्र से नैर्ऋत्य कोण में जटा बाँधकर शुभ कर्म का प्रारम्भ करे। द्विज बैठकर और शिखा बांध कर आचमन करे। पश्चात् वाणी, मन और शरीर को संयत कर अपने बाएँ कन्धे में यज्ञोपवीत धारण करे।'

सन्ध्योपासन आदि शुभ कर्म के समय ग्रन्थियुक्त शिखा के स्पर्श करने का विशेष विधान है। अतः जो लोग सन्ध्योपासन आदि शुभ कर्म के समय ग्रन्थियुक्त शिखा का स्पर्श करते हैं, उनका ध्यान स्थिर होता है और परब्रह्म परमात्मा के साथ उनकी एकतानता शिखा समाधि की स्थिति प्राप्त कराने में सहायक होती है।

हिन्दुओं को सन्ध्योपासन, देवपूजन, वेदपाठ, जप, तप, दान आदि नित्यकर्म शिखा बाँधकर ही करना चाहिये।

खुली हुई शिखा से स्नान आदि करने का शास्त्रों में निषेध किया गया है—

मुक्तकेशैर्न कर्तव्यं प्रेतस्नानं विना क्वचित् ।
स्नानं दानं जपं होमं मुक्तकेशं न कारयेत् ॥

(वृद्ध वसिष्ठः)

'खुली हुई शिखा रखकर स्नान, दान, जप और हवन नहीं करना चाहिये। खुली शिखा रखकर जो स्नान किया जाता है, वह 'प्रेतस्नान' कहलाता है।'

जो मनुष्य खुली हुई शिखा रखकर आचमन करता है, उसके लिये विशेष दोष लिखा है—

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तेऽप्यशुचिर्भवेत्॥

(आह्निकतत्त्व)

शिखाबन्धन वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक होना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण 'गायत्री-मन्त्र' का उच्चारणकर शिखा का बन्धन करें। शिखाबन्धन किये बिना आचमन करने से शारीरिक शुद्धि नहीं होती। अतः शिखाबन्धन करके ही आचमन करना चाहिये। आचमन करने के अनन्तर पूजा-पाठ आदि धर्मकार्य करना उचित है।

शूद्र को भी शिखाबन्धन करके शुभ कर्म करना चाहिये। अतः शूद्र को शिखा बाँधते समय निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—

ब्रह्मवाणी सहस्राणि शिववाणी तथैव च।
विष्णोर्नामसहस्रेण शिखाबन्धं करोम्यहम्॥

(आह्निक तत्त्व)

शिखा खोलते समय निम्नलिखित मन्त्र बोलना चाहिए—

गच्छन्तु सकला देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तिष्ठत्ववाचला लक्ष्मीः शिखामुक्तं करोम्यहम्॥

(आह्निकतत्त्व)

शिखा का स्थान और उसका महत्त्व

मनुष्य के शरीर में सिर को 'उत्तमाङ्ग' कहा गया है। मनुष्य के सिर के ऊपर के मध्य भाग में शिखा का स्थान होता है। मनुष्य के शिखा के स्थान में एक अद्भुत और विचित्र शक्ति होती है, जो कि शिखा के द्वारा सूर्य और चन्द्रमा की अमृतमयी उष्ण और शीतल किरणों को मनुष्य के सिर में प्रविष्ट कर उसके समस्त सिर के दूषित विकारों को बाहर निकालती रहती है, जिससे मनुष्य का सिर (मस्तिष्क) सदा स्वस्थ और निर्विकार बना रहता है और वह सिर के किसी भी प्रकार के रोग से कभी भी आक्रान्त नहीं होता। जो पुरुष शिखा-विहीन रहते हैं, वे सूर्य और चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों की प्राप्ति से वञ्चित रहते हैं, जिससे उन्हें पागलपन, मूर्छा, उन्माद आदि मस्तिष्क-सम्बन्धी अनेक भयानक रोग हो जाते हैं।

योगशास्त्र के अनुसार सिर के ऊपरी भाग में जहाँ शिखा रहती है, उस स्थान के नीचे 'सहस्रार' है, उसी को 'सहस्रदलकमल' कहते हैं, जिसमें परम शिव का स्थान है। योगियों को भी ब्रह्मसाक्षात्कार के समय इसी शिखास्थानीय ब्रह्मरन्ध्रों से आती हुई ज्योतियों का अनुभव होता है।

चूडाकरण-संस्कार का काल

हमारे यहाँ शिखाधारण की भी एक विशिष्ट विधि है, जो कि 'चूडाकरण-संस्कार' में सुसम्पन्न होती है। यह चूडाकरण-संस्कार बालक के जन्म होने के बाद प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में करने के लिये कहा गया है[1]—(पार० गृ० सू० २।१।१-२)। यदि किसी के यहाँ

---

१. चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥
(मनुस्मृति २। ३५)

'समस्त द्विजातियों का चूडाकर्म (मुण्डन) पहले अथवा तीसरे वर्ष में धर्म और वेद की आज्ञानुसार करना चाहिये।'

कुलाचारानुसार उपर्युक्त समय के अतिरिक्त समय में 'चूडाकरण-संस्कार करने की प्रथा हो, तो वह उस समय भी 'चूडाकरण-संस्कार' कर सकता है—

'यथामङ्गलं वा सर्वेषाम् ।'

(पार० गृ० सू० २ । १ । ३)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि जिसके यहाँ जैसी कुलप्रथा हो तदनुसार चूडाकरण करे—**'चूडा कार्या यथाकुलम् ।'**

शिखा की संख्या का विचार

चूडाकरण-संस्कार में शिखा रखने के सम्बन्ध में महर्षि बौधायन आदि की आज्ञा है—

'अथैनमेकशिखस्त्रिशिखो पञ्चशिखो वा यथैवैषां कुलधर्मः स्यात् । यथर्षि शिखां निदधातीत्येके ।'

(बौधा० गृ० सू० २ । ४ । १७ । १७)

'यथर्षि शिखां निदधाति यथैवैषां कुलधर्मः स्यात् ।'

(आप० गृ० सू० १ । ६ । १५)

'यथामङ्गलं केशवेषान् कारयेत् ।'

(आश्व० गृ० सू० १ । १७ । १७)

'यथामङ्गलं केशशेषकरणम् ।'

(पार० गृ० सू० २ । १ । २१)

उपर्युक्त वचनों का सारांश यह है कि—जिसके गोत्र में जितने ऋषि (प्रवर) हों, वह उतनी ही शिखा रखे । अर्थात् एक प्रवरवाला एक शिखा, दो प्रवरवाला दो शिखा, तीन प्रवरवाला तीन शिखा और पाँच प्रवरवाला पाँच शिखा रखे । अथवा जिसके कुल में जितनी शिखा रखते हों, उतनी ही शिखा रखे ।

महर्षि आश्वलायन के **'यथामङ्गलं केशवेषान् कारयेत्'** के अनुसार अपनी कुलपरम्परा के अनुसार एक, दो, तीन, पाँच शिखा रखनी चाहिये।

प्राचीन समय में कुल अथवा गोत्र (प्रवर) तथा ऋषियों की संख्या के अनुसार शिखा रखी जाती थी। किसी-किसी गोत्रवाले ३ और ५ शिखा भी रखते थे, परन्तु अब एक शिखा का भी रखना कठिन हो गया है।

पारस्कर आदि महर्षियों ने बालकों का स्वल्पावस्था में 'चूडा-करण-संस्कार' करने का विधान इसलिये बनाया है, जिससे उन्हें छोटी अवस्था से ही शिखा की आवश्यकता और महत्ता का ज्ञान हो जाय और वे जीवनपर्यन्त शिखा को धारण करें। अतएव आस्तिक पुरुष अपने-अपने बालकों का छोटी अवस्था में ही 'चूडाकरण-संस्कार' कर देते थे, जिससे उनके बालक जीवनपर्यन्त शिखा-धारण करते थे।

दुःख का विषय है कि आज के अधिकांश बालक चूडाकरण-संस्कार में रखी गई शिखा की आवश्यकता और महत्ता की उपेक्षा कर शिखा-धारण नहीं करते। विशेष कर स्कूल-कालेजों में शिक्षा पानेवाले नई सभ्यतावाले लड़कों ने शिखा-धारण को असभ्यता समझ कर उसका त्याग ही कर दिया है।

चूडाकरण का अर्थ

चूडाकरण का अवयवार्थ है—'चूडा का करण।' अतः चूडाकरण में शिखा रखी जाती है, कटाई नहीं जाती। वस्तुतः चूड़ाकरण-संस्कार शिखा-स्थापन के लिये होता है, शिखाच्छेदन के लिये नहीं। इसीलिये चूडाकरण-संस्कार में रखी हुई शिखा को यावज्जीवन धारण और सुरक्षित रखना चाहिये। चूडाकरण-संस्कार में रखी हुई शिखा के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा गया है कि जिस पुरुष के

यहाँ जीवन-मरणसम्बन्धी सूतक हो जाय, तो वह अपने सिर के सारे बालों को कटा ले, किन्तु शिखा को भूलकर भी न कटाये। यथा—

'मुण्डयेत् सर्वगात्राणि कक्षोपस्थशिखां विना।'

अतः हिन्दूमात्र को जीवनपर्यन्त शिखा को धारण करना चाहिये।

जो द्विज ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक शिखा-धारण नहीं करते अथवा शिखा कटवा देते हैं, उन्हें प्रायश्चित्ती बनना पड़ता है और उनकी शुद्धि 'तप्तकृच्छ्र व्रत' को करने से ही होती है—

शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(हारीतः)

'जो द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) मोह से, द्वेष से अथवा अज्ञान से शिखा को काट देते हैं, उनकी शुद्धि 'तप्तकृच्छ्र व्रत' करने से होती है।'

इस सम्बन्ध में वीरमित्रोदयकार ने भी 'काठकगृह्य' के वचन को उद्धृत कर कहा है—

'अथ चेत्प्रमादान्निःशिखं वपनं स्यात्तदा कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपर्याशिखाबन्धादधस्तिष्ठेत्।'

'यदि प्रमाद से शिखा का विनाश हो जाय और वह जब तक शिखा बाँधने योग्य न हो जाय, तब तक वह सन्ध्योपासनादि कर्म करे, तो ब्रह्मग्रन्थि से समन्वित कुशमयी शिखा को अपने दाहिने कान पर रख कर करे।'

उपनयन-शब्दार्थ

'उपनयन' शब्द उपपूर्वक 'नी' धातु से 'ल्यु' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। उप—अर्थात् आचार्य के समीप नयन-अर्थात् बालक को विद्यार्थ ले जाने को 'उपनयन' कहते हैं। अतएव बालक के पिता आदि अपने पुत्रादिकों को विद्याध्ययनार्थ आचार्य के पास ले जायँ, यही उपनयन शब्द का अर्थ है। यद्यपि शब्दतः उपनयन-शब्द का यही अर्थ है, तथापि उपनयन के पूर्व और उत्तर में कुछ आवश्यक कर्म-विशेष होने के कारण शास्त्रकारों ने उपनयनार्थ विशेषरूप से अनेकों पदार्थों का उल्लेख किया है। उपनयन में जिन पदार्थों को कहा गया है, उन सभी पदार्थों के सहित किये जानेवाले कर्म-विशेष को 'उपनयन' कहते हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के नाम

उपनयन, व्रतबन्ध और आचार्यकरण (गुरुकरण)-ये यज्ञोपवीत-संस्कार के नाम हैं।

यज्ञोपवीत के नाम

यज्ञसूत्र, ब्रह्मसूत्र, उपवीत और जनेऊ-ये यज्ञोपवीत के नाम हैं।

उपनयन के अधिकारी

उपनयन का अधिकार केवल [1]द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को है, [2]शूद्र तथा स्त्री को नहीं।

---

१. मातुरग्रे विजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का प्रथम जन्म मातृगर्भ से और द्वितीय जन्म उपनयन-संस्कार के द्वारा होता है, अतः वे द्विज कहलाते हैं।'

२. शिखा यज्ञोपवीतं च कुशा मौनं तथैव च।
वेदाध्ययनभैक्ष्ये च स्त्रीशूद्रपतनानि षट्॥ (धर्मप्रवृत्तौ)

यज्ञोपवीत का जिनको अधिकार है, उनको ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये, अनधिकारी को यज्ञोपवीत धारण नहीं करना चाहिये। यज्ञोपवीत धारण कर लेने से ही जाति की निवृत्ति नहीं होती। धोबी, तेली, नाई आदि के यज्ञोपवीत धारण कर लेने से वे कथमपि ब्राह्मण नहीं हो सकते।

'न नापितो ब्राह्मणतां याति सूत्रादिधारणात्।'

(कौशिकीसंहिता २।३६)

उपनयन का काल

[1]ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये क्रमशः आठ, ग्यारह और बारह वर्ष उपनयन का मुख्य काल कहा गया है (पार० गृ० सू० २।२।१-३) और सोलह; बाईस तथा चौबीस वर्ष तक उपनयन का गौण काल अर्थात् उपनयनकाल का चरमावधि कहा गया है (पार० गृ० सू० २।५।३६-३८)। यदि किसी के यहाँ कुलाचारानुकूल उपर्युक्त उपनयन काल की सीमा के अन्दर नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें और पन्द्रहवें वर्ष में उपनयन करने की प्रथा हो, तो वह उपनयन-संस्कार कर सकता है—**'यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्'** (पार० गृ० सू० २।१।४)। अर्थात् द्विजातियों को शास्त्रविहित उपनयनकाल के भीतर जब चाहें तब उपनयन कर लेना चाहिये।

---

१. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

(मनु० २।३६)

'ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का गर्भ से ग्यारहवें और वैश्य का गर्भ से बारहवें वर्ष में करना चाहिये।'

भगवान् मनु ने कहा है—

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

(मनुस्मृति २।३८)

'सोलह वर्ष तक ब्राह्मण के लिये, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय के लिये और चौबीस वर्ष तक वैश्य के लिये सावित्री के काल का अतिक्रमण नहीं होता अर्थात् इस अवस्था तक उनका उपनयन हो सकता है ।'

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥

(मनुस्मृति २।३९)

'यदि उचित समय पर इनका उपनयन-संस्कार न हो तो उस काल के अनन्तर ये तीनों वर्ण सावित्री से पतित, शिष्ट जनों से निन्दित और व्रात्य हो जाते हैं ।'

द्विजाति के लिये उपनयन काल की जो चरमावधि बतलायी है, उसके बीत जाने पर वे 'पतितसावित्रीक' अर्थात् 'व्रात्य' कहलाते हैं। पतित-सावित्रीक के लिये कहा गया है कि इनका उपनयन-संस्कार न करावे, इन्हें वेद न पढ़ावे, यज्ञ न करावे और इनके साथ स्नान, भोजन, विवाह आदि किसी कार्य में व्यवहार न करे। पतित-सावित्रीक ब्राह्मण के लड़के के साथ कोई भी ब्राह्मण अपनी कन्या का विवाह न करे, यह भगवान् मनु की आज्ञा है—

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणैः सह ॥

(मनुस्मृति २।४०)

'ब्राह्मण इन अपवित्र व्रात्यों के साथ आपत्तिकाल में भी नियमानुसार वेदों का पठन-पाठन और अपनी कन्या का विवाह आदि कदापि न करे।'

उपनयन के कालातिक्रमण होने पर प्रायश्चित्त

उपनयन के मुख्य और गौणकाल के अतिक्रमण होने से [1]'अनादिष्ट प्रायश्चित्त' करके उपनयन-संस्कार होता है। गौण-कालातिक्रम होने पर द्विज की 'व्रात्य' संज्ञा हो जाती है, अतः उसका 'व्रात्यस्तोम' प्रायश्चित्त करके उपनयन-संस्कार करना लिखा है। पतितसावित्रीक को 'व्रात्य' कहते हैं। यह व्रात्यस्तोम लौकिक अग्नि में होता है (कात्यायन श्रौ० सू० १।१।१४)। व्रात्यस्तोम यज्ञ की विधि कात्यायनश्रौतसूत्र (२२।४) में देखनी चाहिये। व्रात्यस्तोम यज्ञ पशुसाध्य और गणयज्ञ है, अतः इस युग में इसका अनुष्ठान निषिद्ध है। इसलिये स्मृतिप्रतिपादित प्रायश्चित्त करके ही व्रात्य की शुद्धि करना चाहिये। व्रात्य के प्रायश्चित्त के लिये गोनिष्क्रय द्रव्य प्रदान करना चाहिये। यह प्रायश्चित्त अन्य प्रायश्चित्तों की अपेक्षा सरल है।

ब्राह्मण के लिये द्वादशाब्द, क्षत्रिय के लिये नवाब्द और वैश्य के लिये षडब्द प्रायचित्त कहा है। इस क्रम से ३६०, २७०, १८०—इस प्रकार गौ अथवा उसका निष्क्रय देना चाहिये।

काम्यपरक उपनयन का काल

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु० २।३७)

---

१. देखिये—हमारी लिखित पारस्करगृह्यसूत्र (२।५।४१) की 'विवृति' टीका की टिप्पणी में 'अनादिष्ट प्रायश्चित्तविधि।'

'ब्रह्मतेज की इच्छा करनेवाले ब्राह्मण का पाँचवें वर्ष में, बल चाहनेवाले क्षत्रिय का छठे वर्ष में और धन चाहनेवाले वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करना चाहिये।'

जो लोग यथासमय अपने बालकों का उपनयन-संस्कार कर उसी समय उन्हें सन्ध्योपासन, गायत्रीजप और वेद का अध्ययन कराते हैं, उनके बालक सन्ध्योपासन आदि के द्वारा अपूर्व दिव्य शक्ति और दिव्य भावों को प्राप्त कर स्वकुलोचित सन्मार्ग पर आरूढ़ होकर परम धार्मिक बनते हैं और अपने जीवन में सभी प्रकार की सफलताएँ प्राप्त कर अपना और विश्व का कल्याण करते हैं।

उपनयन-संस्कार की आवश्यकता

संस्कारों में [1]षोडश संस्कार मुख्य माने जाते हैं, किन्तु इनमें भी 'उपनयन' की ही समस्त धर्मशास्त्रकारों ने प्रधानता और महत्ता स्वीकार की है। उपनयन-संस्कार के ही आश्रय से श्रौत-स्मार्त सभी कर्म प्रवृत्त होते हैं। अतः उपनयन-संस्कारको यथाविधि करने से ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति की शब्दव्यवहार-श्रेणी में आता है, पश्चात् वह स्वजातिविहित कर्म करने का वास्तविक अधिकारी बन पाता है। अन्यथा मनुष्य पतित होकर इहलोक और परलोक के किसी भी कर्म के योग्य नहीं रहता। अतः द्विजातियों के लिये उपनयन-संस्कार अत्यन्त आवश्यक है। उपनयन के बिना वे देवकार्य और पितृकार्य के अनर्ह रहते हैं। उपनयन के बिना मनुष्य का विवाह, सन्ध्या, गायत्री एवं तर्पण आदि श्रौत-स्मार्त किसी भी कर्म में अधिकार नहीं है। केवल इतना ही नहीं, उपनयन-

---

१. आधानपुंससीमन्तजातनामान्नचौलकाः ।
मौञ्जीव्रतानि गोदानसमावर्तविवाहकाः ॥
अन्त्यं चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशेन वै । (जातूकर्ण्यः)

रहित व्यक्ति का स्वजाति के साथ एक पङ्क्ति में बैठकर भोजनादि करने में तथा समस्त द्विज-कर्म करने में भी अविकार नहीं रहता है। अतः उपनयन द्विजत्व का साधक और उत्तेजक है। इसलिये समस्त त्रैवर्णिकों को अपने-अपने वर्ण के उपनयनकालानुसार अपने-अपने बालकों का यथासमय अवश्य ही 'उपनयन-संस्कार' करना चाहिये।

यदि मनुष्य गर्भाधान-पुंसवनादि संस्कारों को यथाविधि न कर सके, तो भी समस्त संस्कारों के मूलभूत 'उपनयन-संस्कार' को अवश्य ही करे। क्योंकि अन्य संस्कार गृह्यसूत्रादि में कहे जाने के कारण परम्परा से श्रुतिमूलक हैं, किन्तु 'उपनयन-संस्कार' तो साक्षात् श्रुति में ही कथित है—

'उपनयनार्थं विद्यार्थः श्रुतितः संस्कारः।'

(आपस्तम्बः)

अथर्ववेद (काण्ड ११, सू० ५) में भी उपनयका श्रुतिपरत्व स्पष्ट सिद्ध है।

कुछ लोग उपनयन के समस्त समय को व्यतीत कर विवाह के समय ही अपने पुत्र का उपनयन कर देते हैं। और कुछ यज्ञोपवीत-धारण को ही उपनयन मानकर 'विन्ध्याचल' आदि में जाकर उचितरूप से उपनयन-संस्कार को न करके केवल यज्ञोपवीत अपने बालक को पहना देते हैं। कुछ लोग अपने बालकों का उपनयन ही नहीं करते। इस प्रकार अपने देश में रहनेवाले द्विजातियों में उपनयन का सर्वथा अभाव (लोप) देखकर चित्त काँप उठता है। आज द्विजाति वर्ग में अनेक प्रकार के अनर्थों और दुःखों की जो परम्परा दिखायी दे रही है, उसका एक प्रधान कारण उपनयन-संस्कार का अभाव है। अतः अपने-अपने बालकों का शास्त्रोक्त समय पर अवश्य उपनयन करना चाहिये, जिससे अपने कुल की, जाति की और

ब्रह्मतेज की पुनः उन्नति हो और जिससे हमारा यह भारतवर्ष अपने वास्तविक तेज को प्राप्तकर विशिष्ट बन सके।

उपनयन-संस्कार से ही द्विजत्व की प्राप्ति

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम्॥

(शंखस्मृति १।६)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। इनका द्वितीय जन्म यज्ञोपवीत-संस्कार से समझना चाहिये।'

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः।
द्वितीयं छन्दसां मातुर्ग्रहणाद् विधिवद् गुरोः॥

(व्यासस्मृति १।२२)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णों के दो जन्म होते हैं। इनमें प्रथम जन्म माता के गर्भ से उत्पन्न होने पर होता है और द्वितीय जन्म गुरु के सान्निध्य में सविधि गायत्री की दीक्षा ग्रहण करने पर होता है।'

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय ३९)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इनका प्रथम जन्म माता के गर्भ से और द्वितीय जन्म मौञ्जीबन्धन (उपनयन-संस्कार) से होता है। इसलिये ये द्विजाति कहे जाते हैं।'

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।'

(मनुस्मृति २।१६९)

'ब्राह्मणादि तीनों वर्ण का पहला जन्म माता के गर्भ से और दूसरा जन्म उपनयन-संस्कार से होता है।'

अतः स्पष्ट है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण जन्म से शूद्र रहते हैं और वे उपनयन-संस्कार से ही 'द्विज' होते हैं—

'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।'

'जन्म से ही जन्मी शूद्र होता है, फिर वह संस्कार से द्विज होता है।'

अतः द्विजत्व की प्राप्ति के लिये द्विजाति का उपनयन-संस्कार आवश्यक है। उपनयन-संस्काररूप जन्म ही द्विजत्व का सम्पादक है। उपनयन-संस्कार से ही द्विजातिका द्विजत्व स्थापित और रक्षित होता है[1]।

यज्ञोपवीत के बिना मनुष्य प्रायश्चित्ती है

जो द्विज यज्ञोपवीत के बिना जल पीता है और मल-मूत्र का परित्याग करता है, वह प्रायश्चित्ती कहा गया है—

विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिवति द्विजः।
उपवासेन चैकेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥
विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद् यदि।
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुद्ध्यति॥

'जो द्विज यज्ञोपवीत के बिना जल पीता है, वह एक दिन के उपवास और पञ्चगव्य के पान करने से शुद्ध होता है। जो द्विज

---

१. 'जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते'। (अत्रिस्मृति १।१३८)

'ब्राह्मण बालक ब्राह्मण के वंश में जन्म लेने से ही ब्राह्मण हो जाता है और जब उसका उपनयन हो जाता है, तब वह द्विज हो जाता है।'

यज्ञोपवीत के बिना मल-मूत्र का त्याग करता है, वह दो दिन के उपवास, दान और हवन करने से शुद्ध होता है।'

और भी कहा है—

ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रं कुरुते तथा।
गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति॥

'जो द्विज यज्ञोपवीत के बिना भोजन करता है, मूल-मूत्र का त्याग करता है, वह आठ हजार गायत्री के जप करने से तथा प्राणायाम करने से शुद्ध होता है।'

व्रतबन्ध और उसका महत्त्व

उपनयन-संस्कार का दूसरा नाम है—'व्रतबन्ध'। इससे पता चलता है कि इस संस्कार के द्वारा बालक को एक दीर्घ व्रत में बाँध दिया जाता है, जो कि संन्यासाश्रम के पहले तक चलता है। द्विजों का जीवन व्रतमय होता है, जिसका प्रारम्भ इसी व्रतबन्ध-संस्कार से होता है। इस व्रतबन्ध से बालक दीर्घायु, बली और तेजस्वी होता है—

'यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।'

(कौषीतकिब्राह्मण)

वेदारम्भ का समय

उपनयन-संस्कार के अनन्तर गुरु के द्वारा शिष्य को 'वेदारम्भ' कराया जाता है। वेदारम्भ उपनयन के बाद ही लिखा है—

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥

(योगियाज्ञवल्क्यः)

भगवान् मनु ने कहा है—

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणश्चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥

(मनुस्मृति २।१७३)

'यज्ञोपवीत होने के बाद व्रतों का उपदेश और वेदाध्ययन का प्रारम्भ क्रम से विधिपूर्वक करने के लिये कहा है।'

अतः सिद्ध है कि यज्ञोपवीत होने से ही द्विज को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है। जिस द्विज का यज्ञोपवीत-संस्कार नहीं हुआ है, उसको वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये वेदाध्ययन के अधिकारार्थ द्विज के लिये यज्ञोपवीत-संस्कार आवश्यक है।

वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त किये बिना द्विज शूद्र के सदृश कहा गया है—

वृथा शूद्रसमास्तावद् विज्ञेयास्ते विचक्षणैः ।
यावद् वेदे न जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥

(शङ्खस्मृति १।८)

'जब तक अनुपनीत द्विजों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त न हो, तब तक पण्डितों को उन्हें शूद्र के सदृश समझना चाहिये और जब वे उपनीत होकर वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त कर लें, तब उन्हें द्विज समझना चाहिये।'

अतः स्पष्ट है कि केवल यज्ञोपवीत के धारण कर लेने से ही द्विजत्व प्राप्त नहीं होता, किन्तु वेदाध्ययन करने से द्विजत्व प्राप्त होता है। इसलिये यज्ञोपवीत वेदाध्ययन के अधिकार का निष्पादक और द्विजत्व का सम्पादक है।

वेदारम्भ सर्वप्रथम अपनी परम्परागत शाखा का ही होना

चाहिये। अन्यथा दूसरी शाखा के अध्ययन से मनुष्य पतित हो जाता है। अतः सर्वप्रथम अपनी शाखा के वेद का पूर्णाध्ययन करके दूसरी शाखा के वेद का अध्ययन किया जा सकता है। जो नियमानुसार वेदाध्ययन करता है, वह ब्रह्मसायुज्य की प्राप्ति करता है। लिखा भी है—

यच्छाखीयैस्तु संस्कारैः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत्।
तच्छाखाध्ययनं कार्यमन्यथा पतितो भवेत्॥
अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्।
पारम्पर्यगतो येषां वेदः सपरिबृंहणः॥
तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा।
एवमध्ययनं कुर्वन् ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥

(संस्कारप्रकाश)

उपनयन के बाद द्विज को सर्वप्रथम वेदारम्भ कराने के कारण वह वेद द्विज के लिये सर्वदा के लिये उपास्य हो जाता है। अतः द्विज का परम कर्तव्य है कि वह सर्वदा वेद का अभ्यास करता रहे। द्विज के लिये, विशेषतः ब्राह्मण के लिये वेदाभ्यास को परम तप कहा है—

'वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।'

उपनयन-संस्कार के अनन्तर शिष्य को [1]आचार्य (गुरु) और

---

१. उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥
(मनु० २।१४०)

'जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत कर उसको यज्ञ-विद्या और उपनिषद् के सहित वेद और वेदाङ्गों को पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं।'

अग्नि की उपासना करने का विधान है। शिष्य को आचार्य की उपासना से मानसिक शक्ति और अग्नि की उपासना से शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है। अतः आचार्य का कर्तव्य है कि वह उपनयन संस्कार के बाद शिष्य को शौच, सदाचार आदि की शिक्षा दे, जिससे वह शौचाचारादि के द्वारा मानसिक और शारीरिक शक्ति प्राप्त कर अपनी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक उन्नति कर सके। भगवान् मनु ने भी कहा है—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेत् शौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥

(मनुस्मृति २।६९)

'गुरु को चाहिये कि शिष्य को उपनयन-संस्कार करके प्रारम्भ से ही उसे शौच, आचार, अग्नि की उपासना (हवन) और सन्ध्योपासन की शिक्षा दे।'

उपनयन-संस्कार के प्रधान कार्य

उपनयन-संस्कार में केवल यज्ञोपवीत के धारण से और गायत्र्युपदेशमात्र से 'उपनयन' सिद्ध नहीं होता, किन्तु साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करने से ही उपनयन-संस्कार सिद्ध होता है। उपनयन में समन्त्रक बालक का उपनयन और गायत्री-मन्त्र का उपदेश—ये दो प्रधान कार्य हैं और समस्त कार्य अङ्ग हैं।

वेदारम्भ और समावर्त्तन

माध्यन्दिन शाखावाले उपनयन-संस्कार के ही दिन वेदारम्भ और समावर्त्तन कर लेते हैं। माध्यन्दिन शाखावालों को उपनयन-संस्कार के दिन वेदारम्भ और समावर्त्तन कर लेने में कोई दोष दिखायी नहीं देता, क्योंकि हरिहराचार्य प्रभृति ने उपनयन-संस्कार के अनन्तर उपनयन-संस्कार के ही दिन 'वेदारम्भ' करने के लिये कहा है।

यद्यपि उपनयन-संस्कार के ही दिन 'समावर्त्तन-संस्कार' करना उचित नहीं है, किन्तु स्मृत्युक्त ब्रह्मचारी के जो नियम हैं, उनके परिपालन में कठिनता है और उनके अपरिपालन में पातित्य का दोष है, इन बातों को देखकर हमारे प्राचीन ऋषियों ने उपनयन के ही दिन 'समावर्त्तन-संस्कार' करना भी विधेय कहा है। यही आचार-परम्परा आजतक भी प्रतिष्ठित और प्रचलित है। इसीलिये माध्यन्दिन शाखावाले उपनयन, वेदारम्भ और समावर्त्तन—ये तीनों संस्कार एक ही दिन कर लेते हैं।

माध्यन्दिन शाखा के अतिरिक्त शाखावालों की पद्धति में उपनयन के दिन वेदारम्भ अनुक्त है और उपाकर्म के दिन वेदारम्भ उक्त है। अतः वे लोग उपाकर्म के ही दिन वेदारम्भ करते हैं, न कि उपनयन के दिन। जो लोग उपाकर्मपर्यन्त वेदाध्ययन नहीं करते, वे गायत्री से 'ब्रह्मयज्ञ' का अनुष्ठान करते हैं, परन्तु इन लोगों को विचार कर लेना चाहिये कि वेदारम्भ के पूर्व समावर्त्तन करना युक्त है या अयुक्त। क्योंकि उनके सूत्रग्रन्थ में उपाकर्म के बाद ही समावर्त्तन करने का विधान है। अतः उन्हें भी कालापकर्ष करके यथाकथञ्चित् उपनयन के ही दिन वेदारम्भ करके समावर्त्तन कर कर लेना चाहिये, यही समीचीन मार्ग है।

यज्ञोपवीत का सन्देश

वेद में एक लक्ष मन्त्र हैं, जिनमें चार हजार तो ज्ञानकाण्ड के और छियानबे हजार कर्मकाण्ड के हैं। यज्ञोपवीत के ९६ चौओं से इन्हीं ९६ हजार वेदमन्त्रों के भारवहन की प्रतिज्ञा जतलायी जाती है। उपनयन के प्रारम्भ में यज्ञोपवीत पहनकर ब्रह्मचर्य की साधना करनी पड़ती है, साथ ही वेदमन्त्रों का अध्ययन करना पड़ता है। ब्रह्मचर्य की यह साधना कितनी शक्तिशालिनी होती है, यह दुनिया से अविदित नहीं है। इस तरह वानप्रस्थाश्रमपर्यन्त इस महान् सत्रको

पूरा करना पड़ता है, किन्तु इस कर्मसूत्र में लगकर मनुष्य कहीं अपना परम लक्ष्य भूल न जाय, इसलिये यज्ञोपवीत का प्रत्येक तार सदा उसकी याद दिलाता रहता है। एक ही सूत्र से यज्ञोपवीत बनता है। पहले उसे तीन, फिर नव और अन्त में एक ब्रह्मग्रन्थि में उसे समाप्त किया जाता है। इस प्रक्रिया से यज्ञोपवीत प्रत्येक व्रती को सूचित करता रहता है कि एक ही ईश्वर से त्रिगुणमयी माया निकलती है, जो कि अनेक संख्याओं में विकसित होकर फिर उसी एक में लीन हो जाती है। इसलिये द्विज को चाहिये कि संसार-दशा में समस्त व्यवहार करता हुआ भी लक्ष्य की याद कभी न खो बैठे।

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में भ्रान्ति

कुछ लोगों का कहना है कि यज्ञोपवीत के धारण से बहुत से मनुष्य दीर्घायु, बली और तेजस्वी नहीं होते। इस विषय में निवेदन है कि केवल यज्ञोपवीत धारण करने से यज्ञोपवीत का यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता। यज्ञोपवीत धारण करने के बाद नियमपूर्वक सन्ध्योपासन, गायत्रीजप और अग्नि की उपासना (हवन) और वेदाध्ययन करने से ही मनुष्य दीर्घायु, बलिष्ठ और तेजस्वी होते हैं। जो लोग सन्ध्योपासन, गायत्रीजप, अग्नि की उपासना (हवन) और वेदाध्ययन आदि से विमुख रहते हैं, वे निश्चित ही अल्पायु, बलहीन और तेजोहीन होते हैं। यह तो सभी लोग जानते है कि—व्यायाम (कसरत) करने से मनुष्य की शारीरिक शक्ति बढ़ती है, किन्तु यदि कोई मनुष्य व्यायाम न कर केवल व्यायाम का स्मरण करता रहे, तो उसकी शारीरिक शक्ति कथमपि नहीं बढ़ सकती। अतः ऐसी स्थिति में भी यदि कोई व्यायाम का दोष दे, तो उसकी भूल कही जायगी। यही स्थिति यज्ञोपवीत की भी है। यज्ञोपवीत धारण करने से ही मनुष्य दीर्घायु आदि की प्राप्ति नहीं कर सकता।

अतः दीर्घायु आदि की प्राप्ति के लिये मनुष्य को प्रतिदिन नियम-पूर्वक सन्ध्योपासन आदि कर्म करने चाहिये।

जो यज्ञोपवीत दीर्घायु, बल और तेज को देनेवाला है और जो महत्त्वपूर्ण, पुण्यप्रद एवं पवित्र वैदिकधर्म की चपड़ास है, उसे पहनने में मनुष्य लज्जा का अनुभव करते हैं! किन्तु रेलवे के टी० टी० आई०, फौज के अफसर और पुलिस के थानेदार, कोतवाल और बैंक के चपरासी आदि यज्ञोपवीत की जगह उसी वजनदार अपवित्र चमड़े की चपड़ास को अपने कन्धे पर पहनने में गौरव का अनुभव करते हैं। जिस अपवित्र चमड़े के स्पर्शमात्र से पाप लगता है और जिसके धारण करने से द्विजत्व नष्ट होता है, उसको तो द्विजवर्ग गर्व के साथ धारण करते हैं और जिस पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करने से सब प्रकार से पुण्य प्राप्त होता है और द्विजत्व की रक्षा होती है, उसे वे धारण नहीं करते, यह विशेष आश्चर्य है।

आज बहुत से द्विज यज्ञोपवीत को नहीं मानते। अतः वे यज्ञोपवीत धारण नहीं करते। यज्ञोपवीत के अभाव में वेदमन्त्रों का अध्ययन समाप्त हो गया। वेदमन्त्रों के अध्ययन न करने से सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, नित्यकर्म लुप्त हो गये, जिससे द्विज द्विजत्व से हीन होकर विविध प्रकार की विपत्ति भोग रहे हैं।

उपनयन-संस्कार के त्याग की वृद्धि

द्विज के लिये उपनयन-संस्कार बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहा गया है। उपनयन-संस्कार से ही द्विज 'द्विजत्व' को प्राप्त कर श्रौत-स्मार्त समस्त कर्म करने का अधिकारी बनता है। जिस उपनयन-संस्कार से द्विज द्विजत्व को प्राप्त करता है, आज उस महत्त्वपूर्ण उपनयन-संस्कार की अधिकांश द्विज उपेक्षा कर उसका त्याग कर रहे हैं। इस प्रकार के उपनयन-संस्कारविहीन कतिपय मनुष्यों से हम उपनयन-संस्कार के त्याग का कारण पूछते हैं, तो वे उत्तर देते हैं कि हमारे

परिवार में एक लड़के का उपनयन-संस्कार हुआ था, उसकी कुछ ही दिन के बाद मृत्यु हो गई। तभी से हमारे यहाँ उपनयन-संस्कार कराना बन्द कर दिया।'

उपनयन-संस्कार कराने से ही लड़का मर गया, यह समझना और कहना सर्वथा भूल है। यदि उपनयन-संस्कार होने से ही किसी का लड़का मर गया, तो मुसलमानों और शूद्रों के लड़कों के उपनयन-संस्कार नहीं होते, तो उनके लड़के क्यों मर जाते हैं? अतः लड़के की मृत्यु होने का दोष उपनयन-संस्कार पर मढ़ना, यह सर्वथा नासमझ की बात है। किसी परिवार में किसी लड़के का विवाह करने पर यदि वह लड़का संयोगवश कुछ दिन बाद मर जाय, तो क्या उस परिवार के मनुष्य दूसरे लड़कों का विवाह करना बन्द कर देंगे? इसी प्रकार किसी के परिवार की कोई कन्या विवाह के बाद ही तत्काल 'विधवा' हो जाय, तो क्या उसके परिवारवाले अपनी दूसरी कन्याओं का विवाह करना बन्द कर देंगे?' इसका उत्तर उपनयन-संस्कारविहीन पुरुषों ने दिया कि—'लड़कों और लड़कियों का विवाह हमें बाध्य होकर करना पड़ता है। लड़के और लड़कियों का विवाह किये बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता।' मैंने कहा—'यही स्थिति उपनयन-संस्कार की भी है। शास्त्रीय दृष्टि से उपनयन-संस्कार किये बिना द्विज सभी प्रकार के धार्मिक कर्मों से वञ्चित रहकर पाप का भागी बना रहता है। अतः द्विज के लिये उपनयन-संस्कार करना परमावश्यक है। वस्तुतः विचार किया जाय, तो स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत-संस्कार करने से किसी बालक की मृत्यु नहीं होती, किन्तु उपनयन-संस्कार से बालक की सर्व प्रकार से रक्षा ही होती है। पूर्व जन्म के संस्कार से यदि किसी के बालक की उपनयन-संस्कार के बाद मृत्यु हो जाय, तो भूलकर भी अन्य बालकों के उपनयन-संस्कार को बन्द नहीं करना चाहिये। अतः प्रत्येक द्विज को उचित है कि वह अपने पुत्र का उपनयन-संस्कार अवश्य करे, जिससे

उसका पुत्र द्विजत्व को प्राप्त कर सन्ध्योपासन, गायत्रीजप, देव-पूजन और वेद का स्वाध्याय आदि का अधिकारी बनकर अपने कर्तव्य का पालन कर सके।

शूद्र को यज्ञोपवीत का निषेध क्यों ?

यज्ञोपवीत में तीन तार होते हैं। इसके तीन तार स्पष्ट बतलाते हैं कि ये तीन वर्णों और तीन आश्रमों के लिये ही हैं। इनका एक तार ब्राह्मण के लिये, दूसरा क्षत्रिय के लिये और तीसरा वैश्य के लिये है। इसी प्रकार इनका एक तार ब्रह्मचर्याश्रम के लिये, दूसरा गृहस्थाश्रम के लिये और तीसरा वानप्रस्थाश्रम के लिये है। अतः स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत तीन वर्णों और तीन आश्रमों के लिये ही विहित है। इसी प्रकार यह यज्ञोपवीत तीन वेदों और तीन देवताओं का उद्बोधक है। यह तीन लोक और तीन काण्डों का ख्यापक है तथा यह तीन ऋणों की मुक्ति का सूचक है।

यह यज्ञोपवीत सनातनधर्म का प्रतिज्ञासूत्र और द्विजत्व का मुख्य चिह्न है।

आजकल कुछ लोग शूद्रों को यह कहकर भड़काते हैं कि–ब्राह्मणों ने तुम्हें यज्ञोपवीत का अधिकार न देकर तुम्हारा घोर अपमान किया है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। शूद्रों को यदि यज्ञोपवीत का अधिकार न देना ही उनका अपमान करना है, तो संन्यासी को भी तो यज्ञोपवीत धारण का अधिकार नहीं है। संन्यास-ग्रहण के बाद संन्यासी को भी तो यज्ञोपवीत नहीं रहता, तो उसे भी अपने को अपमानित समझना चाहिये। अतः स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–इन तीन वर्णों और ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम–इन तीन आश्रमों के लिये ही है, शूद्रों और स्त्रियों के लिये नहीं है।

एक बार एक बहुत प्रतिष्ठित शूद्र महोदय ने मेरे से कहा–'पण्डित जी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की तरह शूद्रों का भी यज्ञोपवीत होने लग जाय, तो इसमें ब्राह्मणों की क्या हानि है ?' मैंने कहा–'हानि और लाभ की बात तो पीछे देखी जायगी। कृपाकर आप पहले यह बतलाइये कि–आपकी शूद्र-जाति में क्या कोई ऐसा विद्वान् है, जो [1]ब्रह्मा के साथ उत्पन्न होनेवाले परम पवित्र यज्ञोपवीत के तीन तारों में एक चौथा तार लगाकर शूद्रों के लिये यज्ञोपवीत पहनने का कानूनी विधान बनवा दे, तब हम समझेंगे कि यज्ञोपवीत का अधिकार चारों वर्णों को है।' इसके उत्तर में प्रतिष्ठित शूद्र महोदय अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में बोले–'पण्डित जी ![2] ब्रह्मा के साथ उत्पन्न होनेवाले यज्ञोपवीत के तीन तारों में चौथा तार लगाने की शक्ति शूद्रों में तो क्या, किसी भी जाति में नहीं है।' पश्चात् मैंने कहा–'जब आपकी जाति में अथवा अन्य भी किसी जाति में यज्ञोपवीत के तीन तारों में चौथा तार लगाने की शक्ति नहीं है, तो यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार शूद्रों को नहीं है।' प्रश्नकर्ता शूद्र महोदय मौन हो गये और आगे कुछ भी नहीं बोल सके।

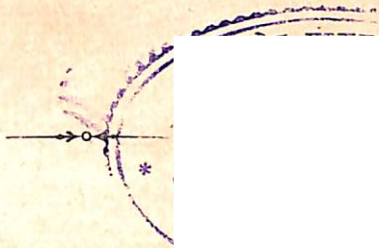

---

१. पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक।

२. यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
(ब्रह्मोपनिषद्)

6

माध्यन्दिनशाखीया विवाह-पद्धतिः
हिन्दीमन्त्रार्थसहिता

[शुभविवाह, अर्कविवाह]

आचार्य श्रीवेणीरामशर्मा गौड़

का अद्वितीय भाग है। भारतीय हिन्दू समाज में विवाह [illegible] संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित है। इसी के अनन्तर जीवन के सम्पूर्ण [illegible] नैतिक एवं आर्थिक कार्यों का विभाजन हो जाता है। यह उत्कृष्ट प्रथा एवं भावना वैदिक काल से आज तक निरन्तर चली आ रही है। प्रस्तुत नवीन संस्करण में लेखक ने वैदिक कालीन विवाह संस्कार के स्वरूप का एवं तत्कालीन सभ्यता का विशद वर्णन किया है। अद्यावधि प्रकाशित विवाह पद्धतियों में कोई भी शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत संस्करण इस अभाव की पूर्ति करने में सक्षम है। इसमें प्रत्येक मन्त्र का अर्थ सुगम हिन्दी भाषा में दिया गया है और पारस्करादि आचार्यों के अनुकूल क्रम पद्धति है। प्रारम्भ में विवाह सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातों को भी खोला गया है। ३-००

मृत्यु-रहस्य

वेदाचार्य वेणीरामशर्मा गौड़

इस पुस्तक का नाम ही विषय को सुस्पष्ट करना है। मृत्यु के बाद जीव किस मार्ग से कहाँ और कब जाता है तथा उसकी क्या गति होती है एवं उसे किस लोक की प्राप्ति होती है, इत्यादि विषयों का विस्तृत वर्णन है। ८—००
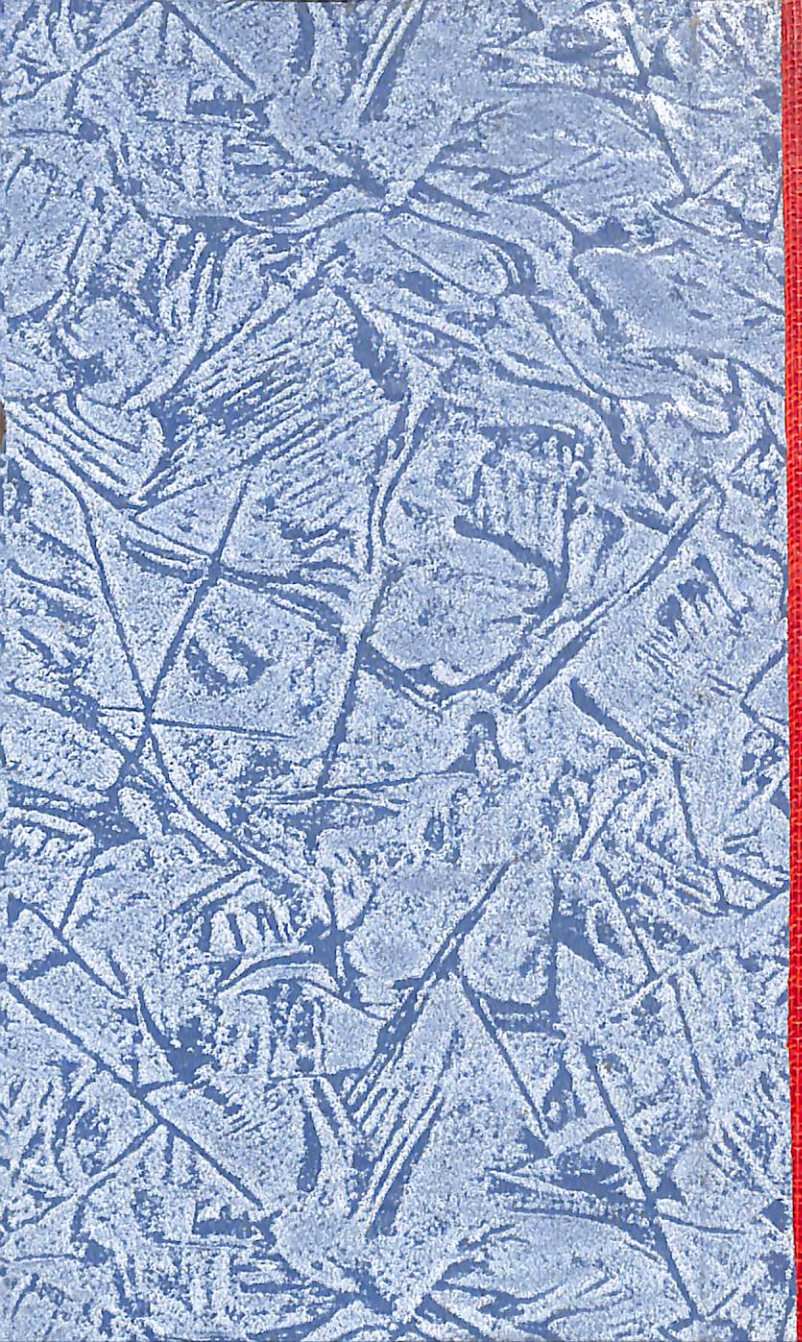
ग्रन्थ प्राप्तिस्थान—चौखम्भा विश्वभारती
पो० बाक्स नं० १३९
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१